मगसिर शुक्ल १०, मंगलवार, दिनांक २४-१२-१९७४, श्लोक-६-७, प्रवचन-१४

भावार्थ। छठी गाथा का अन्तिम। **परमात्मा को गुण अपेक्षा से....** बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा की व्याख्या है न? उसमें परमात्मा.....

अरिहन्त और सिद्ध वह परमात्मदशा / अवस्था है। उसे जितने नाम लागू पड़ते हैं, वे सब नाम इस आत्मा को भी स्वभाव-अपेक्षा से लागू पड़ते हैं। क्या कहा यह? परमेश्वर सिद्ध भगवान, अरिहन्त परमात्मा को गुण की अपेक्षा से अर्थात् वर्तमान गुण पर्याय में प्रगट (हुए वह)। गुण अर्थात् उसके गुण प्रगट हुए पर्याय में ऐसा। उसकी पर्याय—गुण की पर्याय की अपेक्षा से जितने नाम उसे लागू पड़े, उतने नाम इस आत्मा के स्वभाव की अपेक्षा से लागू पड़ते हैं। दोनों में क्या अन्तर पड़ा?

भगवान परमेश्वर तीर्थंकरदेव.... एह हजार (आठ) नाम दिये हैं न इन्द्रों ने केवलज्ञान हो (तब)? कहते हैं कि वे परमेश्वर परमात्मा अरिहन्त, उनकी निर्मल गुण की पर्याय की अपेक्षा से, गुण की पूर्ण प्रगट अपेक्षा से जितने नाम उन्हें लागू पड़े, उतने नाम आत्मा के स्वभाव की अपेक्षा से लागू पड़ते हैं।

**मुमुक्षु :** पर्याय की अपेक्षा से।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह पर्याय अपेक्षा, यह शक्ति अपेक्षा।

.....जिसे प्रगट हुई, ऐसी जो दशा पूर्ण, उसे जितने नाम कहो, वे सब लागू पड़ते हैं, वे आत्मा के स्वभाव की अपेक्षा से सब लागू पड़ते हैं। उसकी शक्ति की अपेक्षा से, गुण की अपेक्षा से, सत् के सत्त्व की अपेक्षा से प्रगट पर्याय के जितने नाम लागू पड़ें, उतने उसे गुण को-शक्ति को लागू पड़ते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

**क्योंकि दोनों आत्माएँ, शक्ति अपेक्षा से समान हैं;....** स्वभाव अपेक्षा से कहा था न? फिर उसका स्पष्टीकरण कर दिया। स्वभाव अर्थात् क्या? कि शक्ति। वस्तु है, उसकी जो शक्ति है, उसका सत्त्व है, उसका जो गुण है, उसका स्वभाव। स्व-भाव। स्वभावी का स्वभाव। वह जितनी शक्तियाँ और स्वभाव है, उन सबको पर्याय अपेक्षा से आत्मा को लागू पड़े। सिद्ध की पर्याय की अपेक्षा से, अरिहन्त की पर्याय की अपेक्षा से

जितनी लागू पड़े, उतनी इस भगवान आत्मा को स्वभाव और शक्ति की अपेक्षा से लागू पड़ता है। आहाहा! समझ में आया?

**क्योंकि दोनों आत्माएँ, शक्ति अपेक्षा से समान हैं;....** क्यों लागू पड़ता है? कि शक्ति की अपेक्षा से दोनों आत्मा—प्रगट हुए और यह (संसारी)—दोनों शक्ति से तो समान हैं। उन्हें प्रगट हुई है, यहाँ प्रगट होने की सामर्थ्य है। आहाहा! समझ में आया?

**जो परमात्मा के गुणों को यथार्थरूप से पहिचानता है,...** यह डाला। जो जानता.... है न? जो अरिहन्त के गुणों को अर्थात् उनकी पर्याय को,.... अरिहन्त के द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों। उन्हें जो बराबर पहिचानता है, **वह अपने आत्मा के स्वरूप को जाने बिना नहीं रहता।** देखा! आहाहा! अरे! मैं भी आत्मा उनकी जाति का, उनकी नात का (हूँ)। उनकी जाति की पंक्ति में रहा हुआ। उन्हें पर्याय अपेक्षा से जितना कहा जाये, उतना मैं भी वैसा हूँ, उस आत्मा को जाने। आहाहा! अपने ज्ञान के स्वरूप को जाने बिना रहे नहीं। यहाँ तो यह सिद्ध करना है न। अरिहन्त का है न, पहले जाने अरिहन्त। उसमें भी तर्क उठे कि परद्रव्य के गुण-पर्याय जाने, इसलिए आत्मा ज्ञात हो, यह तो निमित्त की वार्ता हुई। यह तो इस अपेक्षा.... निहालभाई ने डाला है। अन्यत्र सब इनकार करो कि निमित्त से नहीं होता और यहाँ अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानने से आत्मा पहिचाना जाता है, यह तो निमित्त की बात है। समझ में आया? कौन सवेरे कोई कहता था न? निहालभाई का है। उसमें यह है, वह यहाँ सब निकलता है प्रवचनसार में।

जो अरिहन्त की दशा के प्रगट पर्याय को जाने तो उनके गुण-शक्ति और उनका आत्मा इन तीनों को जाने। और उसे जानने पर मैं भी वैसा ही आत्मा उनकी जाति का हूँ। तो उसे यह पर का जानने का लक्ष्य छोड़कर.... छोड़कर। बात तो ऐसी है कि—

**जो जानता अर्हंत को द्रव्य गुण पर्ययपने।**
**वह जीव जाने आत्म को, उस मोह क्षय पावे अरे।**

(प्रवचनसार, गाथा ८०)

इसका अर्थ है कि ऐसा ही यहाँ आत्मा लिया (कि) जिसने परमात्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाना, उसे आत्मा ज्ञात हुए बिना रहनेवाला नहीं है, ऐसा आत्मा लिया

है। समझ में आया? हे न? **स्वरूप को जाने बिना नहीं रहता।** आहाहा! उसे पूर्ण पर्याय में पूर्णता है। मेरे स्वभाव में परिपूर्णता है और स्वभाववानरूप से परिपूर्ण है। और उसे परिपूर्ण पर्याय है। तो वह परिपूर्ण पर्याय मुझे नहीं तो प्रगटे कैसे? कि पूर्ण द्रव्य और पूर्ण स्वभाव के आश्रय से प्रगटे। इसलिए उसका आश्रय ले। आहाहा! यह ज्ञान की क्रिया और दर्शन का विषय, उसकी महिमा जगत को नहीं आती। बाह्य त्याग किया और यह किया और वह किया। आहाहा! वह आत्मा को जाने बिना नहीं रहता। ऐसा कहा, देखा! पाठ ऐसा है न? **वह जीव जाने आत्म को,.... 'जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं'** पाठ है न ऐसा? **'सो जाणदि अप्पाणं'** ऐसा लिया है न? **'सो जाणदि अप्पाणं'** तब (कोई) कहे, ऐसे द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान ग्यारह अंग और नौ पूर्व में नहीं आया?

**मुमुक्षु :** ....अपने आत्मा को तो जाना नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उन्हें ऐसा ही यह प्रगट है, वैसा ही मैं शक्ति में हूँ, ऐसी इसने द्रव्यस्वभाव की स्पर्शना नहीं की। समझ में आया? आहाहा!

निमित्त को उपादान कहता है न कि तू तो रोकनेवाला है। ऐई! चन्दुभाई! किसमें? उपादान-निमित्त (दोहा में)। .... उसमें से वापस यह निकाला, देखो! ... रोकता है या नहीं? परवस्तु यहाँ रोकती है या नहीं? उपादान का बहुत सब लिखा है। दो-तीन श्लोक डाले। ऐसा तो यह कहा कि निमित्त का लक्ष्य करेगा, आश्रय करेगा, उसे राग होगा और उपादान का आश्रय करेगा, उसे वीतरागता प्रगट होगी। समझ में आया? ऐसा बतलाने को ऐसा कहा है। तब कहे, देखो! देह पिंजरा जीव को रोकता है। आया या नहीं? उसमें लिखा है या नहीं लिखा? निमित्त रोकता है उसे। निमित्त की बलवत्ता है या नहीं? जिसमें से तुम अकेला उपादान-उपादान कहते हो। ऐई! उसमें निमित्त का निकलता है या नहीं? किस अपेक्षा से, भाई!

भाई ने—निहालचन्दभाई ने डाला है। तुम अन्यत्र सब कहते हो कि पर को जानने का हो तो स्वयं के कारण होता है, उसके कारण नहीं होता। यहाँ तो ऐसा कहा है। **'जो जाणदि अरहंतं',** यह तो निमित्त से कथन किया है। समझ में आया? इससे यहाँ कहा न? जो जाने और जाने बिना रहे नहीं। आहाहा! ऐसा ही आत्मा मैं हूँ परिपूर्ण

शक्ति स्वभाव सत्त्व से, ऐसा जाने बिना रहे नहीं, उसने अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय जाने, ऐसा निमित्तरूप से कहने में यह बात है। आहाहा! मूल स्वतन्त्रता की जिसे खबर नहीं न। पर्याय... पर्याय का उत्पाद स्वतन्त्र है। ऐसा तो कहा, नहीं? उसके कारण हो, यह आया कहाँ उसमें? समझ में आया?

**जितने गुण परमात्मा में हैं, उतने ही गुण प्रत्येक आत्मा में हैं।** प्रत्येक आत्मा में तो अभव्य और सब आ गये। अभव्य में इतने ही गुण हैं। समझ में आया? पाठ में आ गया है पहले। यह बात तो हमारे वहाँ.... कहा न? (संवत्) १९८५ में हुई। मणिलालजी के साथ। वे मोहनलालजी ऐसा कहे कि.... मोहनलालजी थे, पहिचानते थे? .... चातुर्मास था राजकोट। (संवत्) १९८० में। मोहनलाल.... है कहाँ वे? दूसरे ने बात की। समझ में आया इसमें? कि उसे केवलज्ञान है। केवलज्ञानावरणीय है। भाई! यह तो दूसरे ने बात की। नवरंगभाई! उसे कब हो? कहते थे न? वर्णीजी ऐसा कहते कि शुद्ध तो सभी आत्मा हैं। शुद्ध तो है परन्तु अशुद्धता टालना किस प्रकार? ऐसा नहीं है। शुद्ध है, ऐसी श्रद्धा-ज्ञान में प्रतीति आवे, तब शुद्ध उसके लिये है। ऐई! नवरंगभाई! आहाहा! समझ में आया?

आत्मा शुद्ध है। है। यह सुनकर माने ऐसा है? कहा। ... ऐसा आया है? यह परिपूर्ण वस्तु अनन्त गुण सम्पन्न है, ऐसी जो प्रतीति उसे ज्ञान की पर्याय को उस अस्तित्व का भास हुआ, तब उसके लिये शक्ति है। भाई! यह तो ऐसा अन्तर है कि थोड़े अन्तर में बहुत अन्तर पड़ जाता है। समझ में आया? ऐसा कि शक्ति से शुद्ध तो है। अब अपने अशुद्धता टालना किस प्रकार? इसलिए शुद्ध है, वह तो सब जानते हैं। अरे... बापू! ऐसा नहीं, भाई!

यह प्रभु शुद्ध है, वह तो परद्रव्य के लक्ष्य को छोड़कर...यह आता है न? (समयसार) छठवीं गाथा में। स्व की उपासना करने से.... आहाहा! गजब टीका है! स्वसन्मुख ढला हुआ। उसकी सेवा की अर्थात् कि उसने अन्दर श्रद्धा में सब स्वीकार किया। ओहोहो! ऐसी जो श्रद्धा की पर्याय शुद्ध में, उसकी प्रतीति आयी, उसे वह शुद्ध है। समझ में आया? आहाहा! कहो, समझ में आया? यह तो भाषा सादी है। आहाहा!

ऐसे अरिहन्त की दशा पूर्ण प्रगट हुई, ऐसा मैं हूँ। कौन माने? कौन जाने? कि यह शक्ति का तत्त्व जो पूरा है, उसका जिसने सन्मुख होकर स्वीकार किया है कि यह है। समझ में आया? उसे '**मोहो खलु जादि तस्स लयं**'। उसका मोह नाश हो ही जाता है। दर्शनमोह का नाश हो जाता है, और उसे सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा! कैसी शैली है यह!

**जितने गुण परमात्मा में हैं, उतने ही गुण प्रत्येक आत्मा में हैं।** परन्तु वे हैं, किसे? समझ में आया? है, उसका जिसे अन्तर में ज्ञान की पर्याय में वह है, उसका ज्ञेय होकर, ज्ञान की पर्याय में वह है, उसका ज्ञेय होकर ज्ञान हुआ, उसे है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! 'है' में इतना जोर है, कहते हैं। सम्यग्दर्शन-श्रद्धा, उसमें इतना जोर है। उस श्रद्धा में यह वस्तु ख्याल में आयी है। ज्ञान की पर्याय में (अनुभव हो गया है)। श्रद्धा को तो कुछ ख्याल नहीं आता इसमें। ज्ञान की पर्याय की अनुभूति में यह वस्तु पूर्ण शक्तिवाली है, ऐसा उसे प्रगट शुद्ध पर्याय में पूर्ण शुद्ध की प्रतीति हो गयी है। है, उसकी प्रतीति हुई है। आहाहा! समझ में आया?

**उतने ही गुण प्रत्येक आत्मा में हैं। निज त्रिकाली आत्मा के सन्मुख होकर,...** देखो! यह है, इस आत्मा के सन्मुख होकर 'यह है' ऐसा स्वीकार हुआ। **उनका परिपूर्ण विकास करके,....** वह पूर्ण वस्तु शक्ति से पूर्ण है, ऐसा पर्याय में ज्ञान में भासित हुआ, तब उसकी प्रतीति हुई कि यह तो पूर्ण स्वरूप है। समझ में आया? १७-१८ में यह आता है न? गाथा १७-१८। जो चीज़ जानी.... टोडरमलजी। भावभासन हुआ, ऐसी भाषा प्रयोग की है। उसका हेतु यह है। समझ में आया? लो, कहाँ का कहाँ आया, कहाँ का कहाँ आया! उसे भावभासन हुआ है। भावभासन अर्थात्? उन-उन शक्तियों का भाव ऐसा है, ऐसा ज्ञान में इसे आया है। आहाहा! समझ में आया?

**निज त्रिकाली आत्मा के सन्मुख होकर,....** अर्थात् कि ऐसा जो था राग की सन्मुखता में परसन्मुख, तब उसका अनादर था। होने पर भी—शक्ति, सत्त्व, स्वभावरूप होने पर भी—यह नहीं था। समझ में आया? क्योंकि वस्तु जो है, उसके ज्ञान में 'यह है' यह आया नहीं था। उसके सन्मुख हो, तब इसका अर्थ यह हुआ कि उसका स्वीकार किया। समझ में आया? उस **त्रिकाली आत्मा के सन्मुख होकर, उनका परिपूर्ण विकास**

**करके,....** वह तो फिर पर्याय विकास हुई। परन्तु यह तो सन्मुख होकर उसका कैसे इसे ख्याल आया? कि सन्मुख हुआ। सत् वस्तु की (ओर) ऐसे मुख इसका हुआ, ऐसा कहते हैं। वह वस्तु यह है। आहाहा! जिसे ज्ञान की पर्याय में ऐसा ज्ञेय ज्ञात होता है।

बहिन बराबर टाईम से आये हैं। ....भाग्यशाली हैं। ऐसी व्याख्या किसी समय बाहर आवे, हों! आहाहा! सवेरे भी जो था न, वह व्याख्या पहली-वहली ऐसी आयी है। बाहर क्रियाकाण्ड में फँस गये बेचारे, कुछ खबर नहीं होती.... बापू! दृष्टि में दृष्टिवान पूरा नजर में, श्रद्धा में न आवे, तब तक उसका सब व्यर्थ है। यह व्रत, नियम और त्याग सब बिना एक के शून्य हैं। उनकी कीमत नहीं है।

अर्थात् कि ऐसा आत्मा परिपूर्ण है, उसकी श्रद्धा क्या और उस श्रद्धा में भाव का भासन हुआ, वह कोई महा कीमती चीज़ है। चन्दुभाई! आहाहा! यह कोई सम्प्रदाय की बात नहीं है। यह तो वस्तु है, उसके भाव की बात है। 'यह है' उसका भावभासन न हो, तब तक इसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान नहीं हो सकता। आहाहा! और इस भावभासन के लिये तो अन्तर सन्मुख होना चाहिए, कहते हैं। आहाहा! इन्होंने यह शब्द प्रयोग किया है। समझ में आया? इसका आश्रय लेना चाहिए।

महान वस्तु यह है। जिसके एक-एक गुण का पार नहीं, एक-एक गुण की शक्ति के सामर्थ्य का पार नहीं। ऐसी अनन्त शक्ति का अस्तित्व इस शक्तिवान में है। समझ में आया? ऐसी प्रतीति होने पर उसे यह पूर्ण है, ऐसा श्रद्धा-ज्ञान में आ गया। आहाहा! अब उसकी ओर झुककर उसका पूर्णरूप से विकास करके.... आहाहा! **यह आत्मा भी परमात्मा हो सकता है।** आहा! जैनदर्शन की दूसरे की अपेक्षा विशेषता यह है कि एक-एक आत्मा परमात्मारूप और परमात्मा हो सके ऐसा आत्मा है। समझ में आया? यह वस्तु का स्वरूप यह है। समझ में आया? यह रात्रिभोजन नहीं करना, कन्दमूल नहीं खाना, छह परबी ब्रह्मचर्य पालना, यह कहीं जैनदर्शन की विशेषता नहीं है। समझ में आया? ऐसी बातें अन्य में भी होती हैं। यह डाला नहीं? मोक्षमार्गप्रकाशक में डाला है। ऐसा कि ऐसा है, वैसा है, अमुक है। ऐसा तो अन्य में भी है। अन्य में है, वह यह है, वैसा अन्य में नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह वस्तु की.... पूर्ण शक्तिवान, उसकी जो श्रद्धा और ज्ञान, पूर्ण शक्तिवान

(अर्थात्) भगवान अनन्त लक्ष्मी का वान—उसका रूप है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा यह शक्तिवान है। जैसे भगवान। भग अर्थात् अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि जिसकी लक्ष्मी, उसका वह वान। उसका वान उसे है। उसका उसे रूप है। समझ में आया? आहाहा! लोग नहीं कहते कि यह अमुक कैसे वान है? नवरंगभाई! कहते हैं न वहाँ? कि गेहूँ वर्ण है या गोरा वर्ण है या काला.... क्या कहते हैं काले को? भीनेवाने। भीनेवाने। काला वाने नहीं, भीनेवाने। ऐसे आत्मा कैसा है? कि वह भगवान है। भग-लक्ष्मी के वानवाला है। वह इसका वान है। आहाहा! समझ में आया?

श्वेताम्बर में भी केवलज्ञान एक समय में और दूसरे समय में केवलदर्शन। शक्ति पूर्ण है तो पर्याय में पूर्ण प्रगटे तो उसे भंग और खण्ड नहीं होता। समझ में आया इसमें? जो वस्तु है, उसमें ज्ञान-दर्शन की शक्ति पूर्ण है, ऐसी जिसे प्रतीति बैठे, उसे तो केवलज्ञान और केवलदर्शन एक समय में साथ में होता है। (क्योंकि) अन्दर शक्ति साथ में है न? तो एक समय में उसके दोनों उपयोग एक समय में साथ में होते हैं। आहाहा! ऐ... चेतनजी! यह बड़ा विवाद। एक समय में केवलज्ञान, दूसरे समय में केवलदर्शन। यह बात न बैठी तो वे कहे, यह तो अन्यमति के लिये कथन है, ऐसा कहकर (निकाल दिया)। क्योंकि यह बात बैठी नहीं। ऐसे वस्तु टूट जाती है।

वस्तु जो है, वह ज्ञान और दर्शन साथ में पूर्ण है। ज्ञान पूर्ण है और दर्शन से अधूरा है, ऐसा है? और वह एक साथ शक्ति है या पहली यह और बाद में यह, ऐसा है? आहाहा! जिसे यह ज्ञान और दर्शन एक साथ शक्ति है, उसे विकास में जब लाये, तब एकसाथ दोनों पर्याय है। आहाहा! उसे ऐसा कहना कि पहले समय में ज्ञान का व्यापार और दूसरे समय में दर्शन का (हो)। (तो) वस्तु जानी नहीं, शक्ति मानी नहीं। पर्याय की प्रगटता उसे होती नहीं। नवनीतभाई! ऐसा मार्ग है। लोग को अभी २५०० वर्ष है, इसलिए संगठन करो, संगठन करो, समन्वय करो। बापू! किसी के साथ विरोध नहीं। यह आत्मा है। वह भी पूर्ण शक्तिवान है। भूल हो तो पर्याय में है। द्रव्य-गुण में भूल नहीं। आहाहा! व्यक्ति, वह भगवान है। परन्तु वह गुणरूप भगवान है। ऐसी जिसे अपनी श्रद्धा हुई है, उसे सब भगवान गुणरूप से पूर्ण हैं, वे साधर्मी हैं, इस अपेक्षा से। परन्तु पर्याय की अपेक्षा से नहीं। आहाहा! समझ में आया?

**उनका परिपूर्ण विकास करके, यह आत्मा भी परमात्मा हो सकता है।** देखो! यह विशेष बात। एक-एक तत्त्व और जो तत्त्व है, वह अपने में परिपूर्ण है। तो उसकी शक्तियाँ भी परिपूर्ण है। वस्तु परिपूर्ण है तो उसकी शक्तियाँ अनन्त हैं, वे भी परिपूर्ण हैं। वह परिपूर्ण है अनन्त शक्तिवाला रूप, ऐसा जिसे ज्ञान में भास होकर प्रतीति हुई, उसका उपयोग वर्तमान छद्मस्थ में भले ज्ञानोपयोग के समय दर्शन (उपयोग) न हो। क्योंकि बीच में वह आड़ है न राग की। परन्तु पूर्ण शक्ति की जिसे प्रगट दशा हुई, उसे पहले समय में केवलज्ञान और दूसरे समय में केवलदर्शन, तीसरे समय में केवलज्ञान और चौथे समय में केवलदर्शन ऐसा है उसमें, यह वस्तु का स्वरूप ही नहीं है। गुण को अन्दर साथ में माना हो तो वह पर्याय भी एक साथ दो इकट्ठी हो। इसलिए वास्तव में तो उसने द्रव्य को और गुण को जाना नहीं। आहाहा! यह तो वस्तु की स्थिति है, हों! यह किसी व्यक्ति के लिये बात नहीं है। यह तो अन्तर कैसे पड़ गया? (यह कहा)। मूल चीज़ की जो वस्तु है, एक साथ अनन्त गुण हैं, ऐसी यदि उसे ख्याल में और प्रतीति में आवे तो ऐसा खण्ड-भंग उसके कार्य में न कहे। समझ में आया? इसलिए कहते हैं कि पूर्ण विकास करके आत्मा भी परमात्मा एक समय में पूर्ण हो सकता है। आहाहा!

## श्लोक - ७

*इदानीं बहिरात्मनो देहस्यात्मत्वेनाध्यवसाये कारणमुपदर्शयन्नाह -*

***बहिरात्मेन्द्रिय-द्वारै-रात्मज्ञान-पराङ्मुखः।**
**स्फुरितः स्वात्मनो देहमात्मत्वेनाध्यवश्यति॥ ७॥**

---

* **बहित्थे फुरियमणो इंद्रियदारेण णियसरूवचओ।**
**णियदेहं अप्पाणं अज्झवसदि मूढदिट्ठीओ॥**

***अर्थात्,*** **मूढ़दृष्टि अज्ञानी मोही मिथ्यादृष्टि है, वह बाह्यपदार्थ - धन, धान्य, कुटुम्ब आदि इष्ट पदार्थों में स्फुरित (-तत्पर) मनवाला है तथा इन्द्रियों के द्वार से अपने स्वरूप से च्युत है और इन्द्रियों को ही आत्मा जानता है, ऐसा होता हुआ अपने देह को ही आत्मा जानता है-निश्चय करता है, इस प्रकार मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है।**

*(- श्री मोक्षप्राभृत, गाथा-८, कुन्दकुन्दाचार्यः)*

इन्द्रियद्वारैरिन्द्रियमुखैः कृत्वा स्फुरितो बहिरर्थग्रहणे व्यापृतः सन् बहिरात्मा मूढात्मा। आत्मज्ञानपराङ्मुखो जीवस्वरूप-ज्ञानाद्बहिर्भूतो भवति। तथाभूतश्च सन्नसौ किं करोति? स्वात्मनो देहमात्मत्वेनाध्यवस्यति आत्मीय शरीरमेवाहमिति प्रतिपद्यते॥७॥

---

अब, बहिरात्मा को देह में आत्मबुद्धिरूप मिथ्यामान्यता किस कारण से होती है, वह बतलाते हुए कहते हैं —

आत्मज्ञान से हो विमुख, इन्द्रिय से बहिरात्म।
आत्मा को तनमय समझ, तन ही गिने निजात्म॥ ७॥

*अन्वयार्थ* - ( बहिरात्मा ) बहिरात्मा, ( इन्द्रियद्वारैः ) इन्द्रिय द्वारों से ( स्फुरित ) बाह्यपदार्थों को ही ग्रहण करने में प्रवृत्त होने से, ( आत्मज्ञान पराङ्मुख ) आत्मज्ञान से पराङ्मुख-वञ्चित होता है; इससे वह ( आत्मनः देहं ) अपने शरीर को, ( आत्मत्वेन अध्यवस्यति ) मिथ्या अभिप्रायपूर्वक, आत्मारूप समझता है।

*टीका* - इन्द्रियोंरूप द्वारों से अर्थात् इन्द्रियोंरूप मुख से बाहर के पदार्थों के ग्रहण में रुका हुआ होने से, वह बहिरात्मा-मूढ़ात्मा है। वह आत्मज्ञान से पराङ्मुख अर्थात् जीवस्वरूप के ज्ञान से बहिर्भूत है। वैसा होता हुआ वह ( बहिरात्मा ) क्या करता है? अपनी देह को आत्मारूप मानता है अर्थात् अपना शरीर, वही 'मैं हूँ' — ऐसी मिथ्या मान्यता करता है।

*भावार्थ - बहिरात्मा, बाह्यइन्द्रियों द्वारा जिन मूर्तिक पदार्थों का ग्रहण करता है, उन्हें मोहवश अपना मानता है। उसको अन्तर के आत्मतत्त्व का कुछ भी ज्ञान नहीं; इस कारण वह अपने शरीर को ही, आत्मा समझता है अर्थात् शरीर, मन, वाणी की क्रिया जो जड़ की क्रिया है, उन्हें मैं कर सकता हूँ और मैं स्वयं उनका स्वामी हूँ—ऐसा मानता है।*

*जीव, त्रिकाल ज्ञानस्वरूप है। उसको बहिरात्मा अज्ञानवश नहीं जानता और बाह्य-इन्द्रियगोचर पदार्थ, जो मात्र ज्ञेयरूप हैं, उनमें इष्ट-अनिष्ट की कल्पना करके, अपने को सुखी-दुःखी, धनवान-निर्धन, सुरूप-कुरूप, राजा-रंक इत्यादि होना मानता है।*

*विशेष स्पष्टीकरण -*

*मिथ्याअभिप्रायवश अज्ञानी मानता है कि 'शरीर उत्पन्न होने से मेरा जन्म*

*हुआ; शरीर का नाश होने से मैं मर जाऊँगा; शरीर की उष्ण अवस्था होने पर, मुझे बुखार आया; शरीर की भूख-प्यास आदिरूप अवस्था होने पर, मुझे भूख-प्यास लगी; शरीर के कटने से मैं कट गया' — इस प्रकार वह अजीव की अवस्था को, अपनी ( आत्मा की ) अवस्था मानता है।*

*'.....अपने को आपरूप जानकर, पर का अंश भी अपने में नहीं मिलाना और अपना अंश भी पर में नहीं मिलाना — ऐसा सच्चा श्रद्धान नहीं करता। जैसे - अन्य मिथ्यादृष्टि, निर्धार बिना पर्यायबुद्धि से जानपने में व वर्णादि में अहंबुद्धि धारण करते हैं; उसी प्रकार यह भी आत्माश्रित ज्ञानादि में और शरीराश्रित उपदेश-उपवासादि क्रियाओं में अपनत्व मानता है।..... तथा पर्याय में जीव-पुद्गल के परस्पर निमित्त से अनेक क्रियाएँ होती हैं, उन्हें दोनों द्रव्यों के मिलाप से उत्पन्न हुई मानता है किन्तु यह जीव की क्रिया है, उसका पुद्गल, निमित्त है; यह पुद्गल की क्रिया है, उसका जीव, निमित्त है — ऐसा भिन्न-भिन्न भाव भासित नहीं होता।[१]'*

*'जिसकी मति, अज्ञान से मोहित है और जो मोह, राग, द्वेष आदि बहुत भावों से सहित है, वह जीव ऐसा कहता है ( मानता है ) कि ये शरीरादि बद्ध और धनादि अबद्ध पुद्गलद्रव्य मेरे हैं।[२]' तथा*

*शरीरादि बाह्यपदार्थों में एकताबुद्धि करने से अज्ञानी को भ्रम होता है कि रस, रूप, गन्ध, स्पर्श और शब्द का जो ज्ञान होता है, वह इन्द्रियों से होता है तथा घट-पटादि का जो ज्ञान होता है, वह बाह्यपदार्थों से होता है किन्तु उसे ज्ञात नहीं है कि जीव को जो ज्ञान होता है, वह अपनी ज्ञानगुणरूप उपादानशक्ति से होता है। इन्द्रियाँ और घट-पटादि पदार्थ तो जड़ हैं, उनसे ज्ञान नहीं होता; ज्ञान होने में वे तो निमित्तमात्र हैं।*

**इस प्रकार बहिरात्मा अपने ज्ञानात्मकस्वभाव को भूलकर, शरीरादि परपदार्थों से अपना अस्तित्व मानता है अर्थात् वह शरीरादि परपदार्थों में ही आत्मबुद्धि करता है॥७॥**

---

१. श्री मोक्षमार्गप्रकाशक, अध्याय ७, पृष्ठ-२२५

२. श्री समयसार, गाथा २३

श्लोक-७ पर प्रवचन

**अब, बहिरात्मा को देह में आत्मबुद्धिरूप....** अब स्वयं पाठ में विस्तार करते हैं। अर्थ में तो किया है। बहिरात्मा अर्थात् कि **देह में आत्मबुद्धिरूप मिथ्या मान्यता...** स्थूल... यह ऐसा आत्मद्रव्य है, उसकी प्रतीति और अनुभव और उसकी श्रद्धा जहाँ नहीं, उसे राग और प्रगट अल्पज्ञता, इतने अंश में ही आत्मा है। अर्थात् यह अल्पज्ञता और राग, वह वस्तु के पूर्ण स्वभाव में नहीं है। इसलिए वह इतने माननेवाले को बहिरात्मा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? **बहिरात्मा को देह में...** उस राग को भी वह सब स्थिति है। आहाहा! एक समय का प्रगट अंश, परन्तु वह व्यवहार है। समझ में आया? उसे जहाँ आत्मा मानता है, वह वस्तु के द्रव्य और गुण के परिपूर्ण में उस अल्पज्ञ का विकास है, वह उसमें नहीं। समझ में आया? इसलिए वह अल्पज्ञ और राग के ऊपर रुचिवाला होने से उस आत्मा में ऐसा अल्पज्ञपना और राग नहीं है, वह बहिर् है, उसे माननेवाला, उसे बहिरात्मा कहते हैं। आहाहा! शान्तिभाई! आहाहा! वह **आत्मबुद्धिरूप मिथ्यामान्यता किस कारण से होती है, वह बतलाते हुए कहते हैं —**

**बहिरात्मेन्द्रिय-द्वारै-रात्मज्ञान-पराङ्मुखः।**
**स्फुरितः स्वात्मनो देहमात्मत्वेनाध्यवश्यति॥ ७॥**

**अन्वयार्थ - बहिरात्मा, इन्द्रिय द्वारों से बाह्य पदार्थों को ही ग्रहण करने में प्रवृत्त होने से,....** क्योंकि उसे अतीन्द्रिय जो वस्तु है, उसका तो ज्ञान नहीं; इसलिए उसका इन्द्रिय की ओर के लक्ष्यवाला, इन्द्रिय की ओर के लक्ष्यवाला ज्ञान... है? **इन्द्रिय द्वारों से बाह्यपदार्थों को....** इन्द्रिय ज्ञान द्वारा तो बाह्य पदार्थ जानने में आवे या इन्द्रिय द्वारा अणीन्द्रिय आत्मा जानने में आवे? आहाहा! यह पर्याय में लक्ष्य किया है न? पर्याय में जो क्षयोपशमभाव है, वह भावेन्द्रिय है।

**इन्द्रिय द्वारों से बाह्य पदार्थों को ही ग्रहण करने में प्रवृत्त होने से,....** आहाहा! अर्थात्? कि ज्ञान का जो वर्तमान क्षयोपशम अंश है, वह भावेन्द्रिय है और वह भावेन्द्रिय द्वारा परवस्तु को लक्ष्य में लेता है। उस भावेन्द्रिय द्वारा स्व का लक्ष्य नहीं आ

सकता। आहाहा! समझ में आया? इन्द्रिय द्वार से शब्द है न? भावेन्द्रिय द्वार से द्रव्य निमित्त में गया—द्रव्येन्द्रिय में और उससे बाह्य पदार्थ जानने में आते हैं। आहाहा! उसमें बाह्य पदार्थों को जानने में। ग्रहण करना अर्थात् जानना। पकड़ता कहाँ है वहाँ? आहाहा!

**इन्द्रिय द्वारों से.... 'स्फुरितः'** इन्द्रिय द्वार से उसे पर की स्फुरता जानने में आयी, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **आत्मज्ञान से पराङ्मुख...** ऐसा जो इन्द्रिय द्वार से जहाँ जानने का प्रयत्न है, उसे आत्मज्ञान पराङ्मुख है। आत्मा का जो ज्ञान उससे उल्टा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! आचार्यों ने समाधिशतक में भी.... समाधिशतक के सब श्लोक हैं उसमें, हों! शब्दकोश में। अलग-अलग कोई-कोई कहे हैं।

यहाँ कहते हैं कि उसे यहाँ आत्मा को.... यहाँ ग्रन्थ का नाम समाधिशतक है न? समाधितन्त्र है न? यह नाम किसलिए रखा? समाधितन्त्र। शतक। शतक तो यह श्लोक की (संख्या) के कारण से। तन्त्र। आत्मा अपनी चीज़ को अवलम्बकर हो, उसमें इन्द्रिय द्वार वहाँ काम नहीं करते। समझ में आया? और इन्द्रिय द्वारा जहाँ काम लेता है, तो उसमें से बाह्य पदार्थ ज्ञात होते हैं, स्व तो रह जाता है। आहाहा!

**बाह्य पदार्थों को...** जानने में। ग्रहण शब्द से जानना, हों! वापस कहेंगे, वहाँ कैसे....? जानने में। जानना **करने में प्रवृत्त होने से,.... इन्द्रिय द्वारों से... 'स्फुरित' बाह्यपदार्थों को ही ग्रहण करने में प्रवृत्त होने से, आत्मज्ञान से पराङ्मुख...** आहाहा! जो आत्मा अन्तर अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा ऐसे जाये और जाने, वह बात रह गयी। आहाहा! समझ में आया? **आत्मज्ञान से पराङ्मुख...** आत्मज्ञान.... क्या कहा? इन्द्रिय द्वारा बाह्य पदार्थ का ज्ञान और आत्मज्ञान से पराङ्मुख। समझ में आया? घर में एक ही (पुस्तक) होगी, नहीं? तुम्हारे एक भी नहीं? तुमने ली नहीं तब? तुम्हारे दादा ने ली नहीं होगी।

**मुमुक्षु :** दादा है नहीं, वे गये हैं वडोदरा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा! यहाँ रहते हैं तो (पुस्तक) नहीं ली होगी।

**मुमुक्षु :** उनके पास है।!

**पूज्य गुरुदेवश्री :** है? वहाँ रखी होगी। समझ में आया? प्रकाशित हुई है, थोड़ी

प्रकाशित हुई है। पन्द्रह सौ प्रकाशित हुई है। परन्तु अभी अब पन्द्रह सौ लोगों को.... लोग बढ़ गये। आहाहा!

**इन्द्रिय द्वारों से....** ऐसा शब्द है न मूल पाठ में? बाह्य लक्ष्यवाला इन्द्रिय द्वारा जानने में रुकता है। और इन्द्रिय द्वारा तो बाह्य पदार्थ ज्ञात होते हैं। समझ में आया? और इससे उस आत्मा का ज्ञान जो चाहिए, ऐसा होकर (-स्वरूप सन्मुख होकर होना) चाहिए, उस आत्मज्ञान से पराङ्मुख है। आहाहा! गजब बात है न! आस्रव को इन्द्रिय द्वारा जाने, कहते हैं। ऐई! आस्रव को, वाणी को इन्द्रिय द्वारा जाने।

**मुमुक्षु :** भगवान को इन्द्रिय द्वारा जाने....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भगवान को.... इसीलिए कहा न? **'जो इंदिये जिणित्ता'** ३१ (गाथा, समयसार)। अर्थात् कि भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और भगवान की वाणी, उनका शरीर और भगवान, वे सब इन्द्रिय हैं। क्योंकि यह इन्द्रिय द्वारा वे ज्ञात होते हैं। इसलिए सब इन्द्रिय है। आहाहा! बात.... भगवान तो अणीन्द्रियस्वरूप है। परन्तु उसे जाननेवाला इन्द्रिय द्वारा जाने, इसलिए उसका विषय वह इन्द्रिय हो गयी। उसके द्वारा बाह्य पदार्थ जाने। आहाहा! तो फिर कहा कि **'जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयेत्तेहिं'** यह भी इन्द्रिय द्वारा है। अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानना। इसलिए उससे आत्मा का ज्ञान हो, ऐसा नहीं है। आहाहा!

**आत्मज्ञान से पराङ्मुख....** है। इन्द्रिय द्वारा वह सन्मुख है, उसके सन्मुख है। इन्द्रिय द्वारा तो बाह्य पदार्थ जानने में आवे। भगवान हो या गुरु हो या शास्त्र हो या सम्मेदशिखर हो या शत्रुंजय हो; इन्द्रिय द्वारा जानने में आवे, तब अणीन्द्रिय ऐसा जो भगवान आत्मा, वह आत्मज्ञान से पराङ्मुख हो गया। ऐसी बातें हैं, प्रवीणभाई! बहुत सूक्ष्म बातें। ओहोहो! इसका माहात्म्य क्या करना! इसे अपनी चीज़ क्या है, उसे जानने का ज्ञान किया हो... ऐसा जो आत्मज्ञान, आत्मज्ञान कहा न? आत्मज्ञान। वह इन्द्रिय ज्ञान से होनेवाला बाह्य ज्ञान। आहाहा!

कहते हैं, **आत्मज्ञान से पराङ्मुख-वञ्चित होता है;....** इन्द्रिय से ज्ञान करनेवाला बाह्य पदार्थ को जानते हुए स्वपदार्थ के ज्ञान से वंचित रहता है। .... फिर आया या नहीं

इसमें ? भगवान की वाणी और भगवान इन्द्रिय का विषय है, आया नहीं ? भाषा संक्षिप्त करने जाये तो लोगों भड़कते हैं। यह क्या कहते हैं ? इन्द्रिय द्वारा भावेन्द्रिय का जो क्षयोपशम है, उसके द्वारा द्रव्येन्द्रिय को निमित्त बनाकर, निमित्त होता है बीच में और बाह्य पदार्थ। समझे ? आहाहा ! समझ में आया ? ऐई ! नवरंगभाई ! आहाहा ! यह आत्मज्ञान पराङ्मुख हो गया। आहाहा !

इन्द्रिय द्वारा सुने, इन्द्रिय द्वारा भगवान को देखे, इन्द्रिय द्वारा समवसरण को देखे, वह तो बाह्य पदार्थ का जानना हुआ। समझ में आया ? बाह्य पदार्थ के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने तो इन्द्रिय द्वारा जाने, ऐसा हुआ। ऐई ! और वह आत्मा को जाने, ऐसा वापस आया। बाह्य इन्द्रिय द्वारा जाने, वह आत्मा को जाने। आत्मा को जाने। आहाहा ! समझ में आया ? यह सब निमित्त के कथन हैं। ऐसे अन्तर में आत्मज्ञान करे तो फिर यह बाह्य निमित्त था वह ज्ञान, उसका ज्ञान, हों ! उस ओर का ज्ञान। परलक्ष्यी ज्ञान है। उसे छोड़कर जब स्व का आश्रय करे, तब परलक्ष्यी ज्ञान को निमित्त कहा जाता है। आहाहा ! तो निमित्त ने कुछ किया नहीं वापस उसका। यह सब विवाद। आहाहा !

यह चश्मा और आँख न हो जड़ तो आत्मा को ज्ञान की पर्याय होगी ? खिले कहाँ से ? ज्ञात कहाँ से हो ? अरे ! भाई ! तुझे तो अभी परलक्ष्यी ज्ञान की स्वतन्त्रता की भी खबर नहीं। भगवान की वाणी और भगवान दिखे और शास्त्र सुने, इससे वह ज्ञान हुआ। परलक्ष्यी ज्ञान भी स्वतन्त्र अपने से हुआ है। इन्द्रिय द्वारा हुआ है। समझ में आया ? आहाहा ! दिगम्बर आचार्यों के गहन शास्त्र, गम्भीर शास्त्र गहरे-गहरे ले जाते हैं। आहाहा !

कोई ऐसा कहे कि तू भगवान की वाणी सुन, भगवान के दर्शन कर, तुझे आत्मा ज्ञात होगा। वह मिथ्या बात हुई। ऐई ! यह छह कर्तव्य हैं न श्रावक के ? यह समकिती के हैं। छह बोल। देवपूजा, गुरुसेवा.... है न ? सेवा, संयम, तप, दान। आहाहा ! वह विकल्प है, वह पर के लक्ष्य से उत्पन्न हुआ है, अपना स्वभाव नहीं। समझ में आया ? और उसके लक्ष्य से इन्द्रिय द्वारा जो हुआ, उस ज्ञानवाले को परपदार्थ का (ज्ञान) हुआ। भगवान रह गया। स्वपदार्थ जो त्रिलोकनाथ चैतन्य परमात्मा.... आहाहा ! अरे ! यह

परलक्ष्यी जो बहिर्ज्ञान इन्द्रिय द्वारा ज्ञान (होता है), उस द्वारा आत्मज्ञान नहीं होता। और इन्द्रिय द्वारा जो ज्ञान हुआ, वह वाणी से भी हुआ नहीं। उस समय के उस प्रकार के इन्द्रिय द्वार का क्षयोपशम का अंश है, इसलिए हुआ है। आहाहा! समझ में आया? तो उसके द्वारा आत्मज्ञान हो, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं, वह तो आत्मज्ञान से पराङ्मुख है। ऐई! क्योंकि ऐसे (स्व) सन्मुख नहीं, इसलिए ऐसे (पर) सन्मुख है। ऐसे सन्मुख है वह आत्मज्ञान से विमुख है। आहाहा! वह **वञ्चित होता है;....** पराङ्मुख की व्याख्या की।

इन्द्रिय द्वारा परपदार्थ का ज्ञान करनेवाला आत्मपदार्थ के ज्ञान से वह वंचित रहता है। आहाहा! पराङ्मुख का यह अर्थ किया। समझ में आया? श्रवण (हो), उसमें कान का निमित्त है। क्षयोपशम और उसमें एक विकल्प है। और क्षयोपशम का अंश है। परन्तु उस क्षयोपशम के अंश में तो बाह्य पदार्थ का ख्याल आने पर, बाह्य पदार्थ के जानने में रुकने से, आत्मज्ञान से वंचित रहता है। है? आहाहा! क्या शैली! क्या बात! बात बहुत (सूक्ष्म)। पूज्यपादस्वामी ने बहुत ही अनुभव में से उन्होंने स्व और पर की विभाजन करके बात की है। समझ में आया? कहो, शान्तिभाई! भाग्यशाली इकट्ठे हुए हैं। ऐसी बातें, बापू! आहाहा! सुनने की अपेक्षा से तो भाग्यशाली हैं। अन्तर में भाग्यशाली हो तो.... यह तो परसन्मुख में जाने की जो इन्द्रिय द्वार की क्रिया (होती है) वहाँ तो आत्मज्ञान, द्रव्य का ज्ञान, आत्मवस्तु का ज्ञान, उससे पराङ्मुख है। ओहोहो! अब यह भगवान के दर्शन करे अरिहन्त के या प्रतिमा के या मन्दिर के.... वह इन्द्रिय द्वारा वहाँ रुका, वह आत्मा से, आत्मा के ज्ञान से, आत्मद्रव्य के—स्वद्रव्य के ज्ञान से, परद्रव्य के इन्द्रिय द्वारा ज्ञान (के कारण से), स्व द्वारा होनेवाले ज्ञान से वंचित रह गया। आहाहा! ऐई! समझ में आया?

**इससे वह... 'आत्मनः देह' अपने शरीर को,.... 'आत्मत्वेन अध्यवस्यति'** क्योंकि इन्द्रिय द्वारा परपदार्थ को जानने का भाव, उसमें उसे यही वस्तु मैं हूँ, यह ज्ञान हुआ न पर का? वह सब वास्तव में तो यह शरीर ही है, वह पर। वह अचेतन ज्ञान है। वह अचेतन ऐसे देह को ही उसमें आत्मा माना। आहाहा! **अपने शरीर को मिथ्या**

**अभिप्रायपूर्वक, आत्मारूप समझता है।** आहाहा! गजब बात है! यह तो शान्ति से समझनेयोग्य बात है।

जिसे इन्द्रिय द्वारा.... इन्द्रिय द्वारा तो परपदार्थ है वहाँ। भगवान आत्मा इन्द्रिय प्रत्यक्ष का विषय नहीं है। अलिंगग्रहण में, अलिंगग्रहण में आता है। आत्मा इन्द्रिय द्वारा ज्ञात हो या इन्द्रिय द्वारा जाने, वह आत्मा ही नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाई! यहाँ तो वहाँ गया। क्या कहा? आत्मा इन्द्रिय से जानता नहीं और इन्द्रिय से ज्ञात होता नहीं। दो शब्द है न? अलिंगग्रहण का पहला बोल। अब यहाँ ऐसा कहना है कि इन्द्रिय से ज्ञात नहीं होता। तो इसका अर्थ यह हुआ कि इन्द्रिय द्वारा बाह्य पदार्थ ज्ञात हो, उसमें स्वआत्मा ज्ञात नहीं होता। आहाहा! बाह्य पदार्थ ज्ञात हो, वह चैतन्य के अभावस्वभावरूप भाव हुआ। इसलिए उसे शरीर ही कह दिया, पर। समझ में आया?

पर को जानने इन्द्रिय द्वारा जाना, वह चैतन्यस्वरूप ही नहीं, कहते हैं। आहाहा! इसलिए वह वास्तव में तो अचेतनस्वरूप है। वह चैतन्य का ज्ञान नहीं, इसलिए उसके अतिरिक्त के सभी पदार्थ यह चेतन नहीं है। समझ में आया? अर्थात् यह सब अचेतन हो गया। उपयोग भी अचेतन हुआ। आहाहा! इन्द्रिय द्वारा ज्ञात हो, वह आत्मा (ऐसा मानता है), उसने शरीर को और पर को ही अपना माना है। अथवा इन्द्रिय द्वारा होनेवाला जो ज्ञान, वह ज्ञान मेरा है, वह तो अचेतन को ही मानता है। आहाहा! समझ में आया?

अपने '**आत्मनः देहं**' '**आत्मनः देहं**' यह आत्मा-देह, उसे न (भिन्न) मानता हुआ यह आत्मा, (वह) देह। समझ में आया? यह सोनगढ़ में चले। मुम्बई में ऐसा करने जाये तो भागे। क्या लगायी है यह? बापू! वस्तु तो भगवान, उसके पक्ष में पिंखता तो ऐसा निकले। इन्द्रिय के पक्ष से, पर के पक्ष से जो जाना, वह आत्मा का ज्ञान नहीं, वह तो अजीव का ज्ञान हुआ। आहाहा! वह जीव उसमें नहीं। उसका इसे ज्ञान हुआ। समझ में आया? आहाहा! यह अर्थ किया। इसकी टीका करेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)